अकार का महत्त्व

श्री बद्रीलाल जैन

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहितो, सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः
आचार्याः जिनशासनोन्नति करा, दूजा उपाध्याय काः ।
श्री सिद्धान्त सु पाठकाः मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः
पंचैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मंगलम् ।।

भारतवर्ष की नागरी लिपि अति प्राचीन है, यह कहने में कोई संकोच नहीं है, कि यह लिपि अन्य लिपियों की जननी है और इसका कारण यह है कि इस लिपि के स्वर एवं व्यञ्जन अन्य भाषा-लिपियों में भी समानता रखते हैं ।

नागरी लिपि में स्वर और व्यञ्जन हैं, और उनके संयोग से भाषा बनी है, चाहे आप संस्कृत को देखें, चाहे प्राकृत को, चाहे हिन्दी को, चाहे मराठी को, चाहे गुजराती को, किन्तु सभी में स्वर व्यञ्जन समान ही हैं ।

स्वर का अपना भिन्न अस्तित्व है, और व्यञ्जन का अपना भिन्न अस्तित्व है । स्वर के बिना व्यञ्जन की गति पंगु है, जब तक व्यञ्जन के साथ स्वर का संयोग न हो, वे अपना पूर्ण उच्चारण नहीं दे सकते हैं । स्वर में "अ" का स्थान सर्व प्रथम आता है, और यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं है कि "अ" स्वरों में राजा है, और इसके बिना गति सम्भव नहीं है । इसलिये इसके विषय में ही कुछ लिखना आवश्यक समझा गया है ।

इस लेख के प्रारम्भ में जो श्लोक लिखा है, उसमें अर्हन्तादि पंच परमेष्ठी भगवान को नमस्कार किया गया है । यह पंच परमेष्ठी भगवान का नमस्कार जैन समाज में णमोकार मन्त्र या नवकार मन्त्र के नाम से जाना जाता है । जैन शास्त्र में इसकी बहुत महिमा है । यह मन्त्र सब मन्त्रों में महान है, मन्त्राधिराज है, तथा चौदह पूर्वों का सार इसमें वर्णित है। जिन महापुरुषों को इसमें नमस्कार किया है, वे महान हैं, उनके वैसे तो अनन्त गुण हैं, किन्तु जैनागम द्वारा पांचों पद को मिलाकर १०८ गुण बताये हैं, और यही कारण है कि हमारी प्रतिदिन की भजन की माला १०८ मणियों अथवा मोती की होती है, जिससे हम पंच परमेष्ठी भगवान के गुणों को माला के रूप में फेरते हुये अपनी साधना करते हैं ।

उपरोक्त श्लोक में सर्वप्रथम "अर्हन्त" भगवान को नमस्कार किया गया है । अर्हन्त उनको कहते हैं, जो घनघाती (१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. मोहनीय, ४. अन्तराय) कर्मों को नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, वे राग, द्वेष के विजेता होते हैं, और अपनी दिव्य एवं अमृतमय वाणी से संसार के भव्य जीवों को तिरने का मार्ग बताते हैं, वे अकर्म भूमि से कर्म भूमि में होने वाले जीवों को अपने जीवन जीने का मार्ग बताते हैं, याने वास्तविक जीवन क्या है, जीव कैसे सद्गति प्राप्त कर सकता है, अर्थात् ये अज्ञान रूपी अन्धकार से ज्ञान रूपी प्रकाश की ओर ले जाते हैं । अतः परमेष्ठी पद में सर्वप्रथम अर्हन्त भगवान को ही वंदन किया जाता है । आप जानते हैं कि "अर्हन्त" शब्द का प्रारम्भ 'अकार' से ही होता है ।

दूसरा पद नमस्कार रूप में श्री सिद्ध भगवान का है, जो सर्व कर्म विनिर्मुक्त हैं, यद्यपि सिद्ध भगवान का स्थान अर्हन्त भगवान से बड़ा है, क्योंकि अर्हन्त भगवान भी सब संसार के कार्यों से मुक्ति मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं तब दीक्षा ग्रहण करते समय "ओम् नमो सिद्धम्" कह कर दीक्षा स्वयमेव धारण करते हैं, किन्तु इनकी पहिचान कराने वाले, इनका उद्बोधन देने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले श्री अर्हन्त भगवान ही हैं, वास्ते प्रथम पद श्री अर्हन्त भगवान का नवकार मन्त्र में है। श्री सिद्ध भगवान का न तो कोई शरीर होता है, न वे पुनर्जन्म लेते हैं, और न उनको कोई विकृति होती है। श्री सिद्ध भगवान की स्तुति करते हुये जैन शास्त्र मर्मज्ञ पूज्य माधव मुनि महाराज सिद्ध स्तुति में पद गाते हैं।

सेवो सिद्ध सदा जयकार, जासे होवे मंगलाचार,

अज, अविनाशी, अगम अगोचर, अमल, अचल, अविधार, अन्तर्यामी, त्रिभुवन स्वामी, अमित शक्ति भण्डार।। सेवो सिद्ध...

श्री सिद्ध भगवान के कितने सुन्दर नाम हैं, काव्य शास्त्रानुसार अनुप्रास की लड़ी है, एक समा बंध गया है, इसीलिये "अकार" धन्य हो गया कि श्री सिद्ध भगवान के नाम शब्दों में भी सर्वप्रथम अक्षर रूप में बैठा हुआ है।

तीसरा पद आचार्य देव का है, जो "अकार" से ही प्रारम्भ होता है। "अकार" में स्वर "अ" तथा "आ" दोनों की गणना होती है, इस पद के प्रारम्भ अक्षर के रूप में "अकार" की ही प्रधानता है।

चौथा तथा पांचवां पद भी कम महत्व का नहीं है। अब मैं आपके सामने उक्त पांचों पदों के संयुक्त रूप से बने ऐसे महामन्त्र के विषय में कुछ चर्चा करूँगा, जिस मन्त्र को हिन्दू समाज में मान्यता प्राप्त है, तथा जैन समाज में भी मान्यता प्राप्त है।

ॐ शब्द की उत्पत्ति

जैसा कि पूर्व में बताया गया है परमेष्ठी नमस्कार के पांच पद हैं, उनमें पहिला पद अरिहन्त भगवान का है, जिसका प्रथम अक्षर "अ" है तथा दूसरा पद सिद्ध भगवान का है, जो अशरीरी है याने अशरीर शब्द में भी "अ" अर्थात् अ, अ+आ बन जाता है। तीसरा पद आचार्य देव का है, जिसमें प्रथम अक्षर "आ" है अतः आ+आ, आ ही रहता है। चौथा पद उपाध्याय का है, जिसका प्रथम शब्द "उ" है याने आ+उ की संधि होने पर "ओ" बन जाता है। पांचवां पद साधु का है, याने साधु तथा मुनि एक ही होते हैं, अतः मननात् "मुनि" याने ओ+म की सन्धि होने पर ओम् शब्द की व्युत्पति होती है, इस प्रकार ओम् शब्द बन गया। कहा है:-

ऊंकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः।

जैन शास्त्रानुसार कालचक्र

जैन शास्त्रों में कालचक्र के दो भेद माने गये हैं। एक अवसर्पिणीकाल तथा दूसरा उत्सर्पिणी काल। एक-एक कालचक्र के छह और भेद होते हैं, अवसर्पिणी काल में अकर्म भूमि से कर्म भूमि बनती है, तथा यह काल पदार्थों की उत्पत्ति का उन्नति काल है। इतना ही नहीं, इस काल के चतुर्थ आरे में २४ तीर्थंकर होते हैं, जो भव्य जीवों को मोक्षमार्ग बताते हैं। इस काल में ऐसा समय है कि जीव मोक्ष गति अथवा सद्गति प्राप्त कर सकता है। इस अवसर्पिणी काल की यह विशेषता है कि इसमें २४ तीर्थंकर हुए, उनमें प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ हुए, जिनके नाम का प्रथम अक्षर "अ" ही है। तीर्थंकर भगवान की जो सेवा करते हैं, उनको केवल ज्ञान उत्पन्न होने पर समवशरण की रचना करने वाले 'अमर' (देवता) ही होते हैं, इस प्रकार "अकार" की प्रधानता मानी गई है।

वैष्णव धर्म अनुसार समुद्र मन्थन

वैष्णव धर्म में देवता और राक्षसों के बीच में झगड़ा निपटाने के वास्ते समुद्र मन्थन किया गया, जिसमें १४ रत्न प्रकट हुए। चौदह रत्नों में जो प्रमुख रत्न प्राप्त हुआ, और जिससे देवता अमर बन गये, वह रत्न 'अमृत' ही था, जो 'अकार' के प्रभाव से नहीं बचा।

धर्म की आराधना

अर्हन्त भगवान चार तीर्थ की स्थापना केवलज्ञान प्राप्त होने पर करते हैं, (१) साधु (२) साध्वी (३) श्रावक (४) श्राविका ये चार तीर्थ रूपी संघ है। इस संघ को भगवान धर्म आराधना का उपदेश देते हैं। उसमें साधु संघ के वास्ते ५ महाव्रत तथा श्रावक संघ के वास्ते पांच अणुव्रत पालन का उपदेश देते हैं। वे इस प्रकार हैं-

(१) अहिंसा, (२) असत्य का त्याग, (३) अचौर्यवृत, (४) अब्रह्म का त्याग, (५) अपरिग्रह। इस प्रकार जैन दर्शन के जो पांच मूल सिद्धान्त हैं, उनमें सभी में प्रथम अक्षर के रूप में 'अकार' की प्रधानता है। वास्तव में देखा जाय तो उक्त पांचों सिद्धान्त महान् हैं। आज सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ है, सारा विश्व पीड़ा अनुभव करता है, कोई सुख अनुभव नहीं करता है। यदि उक्त सिद्धान्तों का पालन किया जाय तो सर्वत्र शान्ति हो सकती है, किन्तु आज का सिद्धान्त याने विज्ञान का सिद्धान्त Survival of the fittest मानता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने को सबसे अधिक योग्य एवं शक्तिमान बनाना चाहता है, दूसरे राष्ट्र पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता है, और यही कारण है कि प्रति दिन ऐसे अस्त्र-शस्त्र बनाये जाते हैं, जो संहारक हों, दूरगामी मार करने वाले हों। गत महायुद्ध की विनाश लीला के ज्ञाता लोग विद्यमान हैं, भयंकर संहारक अस्त्र जिसने हिरोशिमा तथा नागासाकी (जापान) के नगरों का विध्वंस किया, वह बम भी तो अणुबम ही था। इसका प्रथम अक्षर भी "अकार" से संयुक्त है, अन्तिम तीर्थंकर याने अर्हन्त भगवान श्री महावीर ने उपदेश दिया कि Live and let live क्या सुन्दर तथा प्रभावशील सिद्धान्त है, इसका पालन न होने पर विनाश लीला का ताण्डव देखने को मिलता है। जैन शास्त्रों में अणु तथा परमाणु शब्द आते हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थों के वास्ते प्रयुक्त किये गये हैं। इस प्रकार आपने देखा कि जहां 'अकार' से प्रारम्भ होने वाले शब्द महानता को बताते हैं, वहां इसके विपरीत 'अणुबम' जैसे संहारक पदार्थों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिये भी 'अकार' का ही प्रयोग हुआ है। यह 'अकार' जहां पालक के रूप में या तारक के रूप जहां प्रयोग में लाया गया, तो वहां संहारक के रूप में भी इसका प्रयोग हुआ है।

मन्त्राक्षर

नवकार मन्त्र के अतिरिक्त अन्य मन्त्र के जहां साधन बताये हैं, वहां पर भी 'अकार' की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। जितने भी स्वर अथवा व्यंजन हैं उनका प्रयोग मन्त्राक्षर के रूप में होता है, इन्हीं स्वर व्यंजनों से बीजाक्षर भी बनते हैं, जो तान्त्रिक साधन में प्रयुक्त होते हैं "ओम ह्रीं श्रीं अर्हम्" आदि इसी प्रकार योग साधन में हिन्दू धर्मशास्त्र में प्रयुक्त होता है, "अहम् ब्रह्मासि" आदि इसमें भी 'अकार' की प्रधानता है।

वैद्यक ग्रन्थ

जैसा कि ऊपर बताया गया है देवासुर द्वारा समुद्र मंथन से १४ रत्न प्राप्त हुये, उनमें अमृत कलश सहित श्री धन्वन्तरी भी पैदा हुए। अमृत रस का पान देवताओं को कराया गया, किन्तु देवताओं की पंक्ति में एक असुर रूप परिवर्तन करके बैठ गया, और अमृत रस का पान कर गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि उसकी पहिचान होने पर उस असुर का शिरोच्छेदन किया गया, तो उसका सिर अलग और धड़ अलग हो गया। वह अमृत पीने से मर नहीं सका, जो आज ज्योतिष विद्यानुसार राहु और केतु के रूप में रह कर मानव को त्रसित करता है। इस प्रकार "अ" से प्रारम्भ होने वाला अमृत रस प्रधान माना जाता है। उर्दू भाषा में इसे 'आबेहयात' कहते हैं, जो 'अकार' से प्रारम्भ होता है। अमृत रस को धन्वन्तरी वैद्यराज ने हिमालय की जड़ी-बूटियों पर मानव हितार्थ छिटका, जिनमें कई बहुत गुणकारी प्रमाणित हुई। एक बूटी जीवनदायिनी है, जिसका प्रभाव नव जीवन प्रदान करता है, रामायण में उल्लेख है कि जब मेघनाद का शक्तिबाण लक्ष्मणजी को लगा, तब उनकी प्राण रक्षा के लिये हनुमानजी हिमालय पर्वत से जो बूटी लाये थे, वह संजीवनी बूटी थी, जिस पर अमृत कण गिरे थे और जीवनदायिनी के रूप में प्रभावित हुई।

भाषा में प्रयोग

'अकार' प्रथम अक्षर का उपयोग संस्कृत, प्राकृत, मागधी, हिन्दी, मराठी आदि में है। इतना ही नहीं, गुजराती भाषा में भी 'अ' अकड़ा के नाम से जाना जाता है। उर्दू भाषा में भी सर्वप्रथम वर्ण 'अलिफ' ही है, जिसका प्रारम्भ 'अ' से होता है, और इसी से कहा जाता है 'अल्लाहो अकबर' याने ईश्वर महान है, मुस्लिम धर्म में भी सृष्टि का कर्ता 'बाबा आदम' को ही माना गया है। पाश्चात्य भाषा इंग्लिश की वर्णमाला भी 'अकार' से अछूती नहीं है। ए., बी., सी., डी., ई., एफ आदि याने सर्वप्रथम ए. का उच्चारण अकार का बोधक है। ईसाई धर्म वाले भी सृष्टि की उत्पत्ति 'अबूब' तथा 'आदम' से मानते हैं, जिसमें प्रथम अक्षर की प्रधानता है।

शरीर रचना

हमारी शरीर रचना में पांच इन्द्रियाँ हैं। (१) आंख (२) कान (३) नाक (४) जीभ (५) त्वचा। 'अकार' से प्रारम्भ होने वाली आंख का महत्व बहुत अधिक है, वर्ना सब शून्य रहता है। कहा भी है--

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्ती तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्शनः किम् करिष्यति॥

यदि 'आंख' न हो तो सर्वत्र अन्धेरा ही रहता है।

जैनागम भण्डार की कुंजी भगवान तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित वाणी जिसका आज समस्त जैन धर्मानुयायी अनुसरण करते हैं, वह प्राचीन काल में कण्ठस्थ करायी जाती थी, बाद में शास्त्र रूप में लिखी गई, जिसको जैन समाज में 'आगम' के नाम से जाना जाता है। जैनागम में ज्ञान का विपुल भण्डार है, और वह भण्डार एक तिजोरी के रूप में है, किन्तु जब तक तिजोरी की कुंजी न हो, वह भण्डार खोला नहीं जा सकता, और यह नहीं मालूम होता कि उसमें क्या अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। अर्हन्त भगवन्त श्री महावीर द्वारा प्रतिपादित जैनागम एक अमूल्य निधि है। इस अमूल्य निधि का उपयोग करने वाला अक्षय सुख को प्राप्त करता है, किन्तु यह अमूल्य निधि कैसे प्राप्त की जाय, यह भण्डार कैसे खोला जाय, यह एक कठिन समस्या थी। यह समस्या कैसे सुलझाई जाय, तथा लोग या मुमुक्षु उस अमूल्य भण्डार को किस प्रकार देख सकें, इस बात को ध्यान में रखकर जैन धर्म के प्रकाण्ड विद्वान शास्त्र मर्मज्ञ, त्रिस्तुति सिद्धान्त के उद्धारक आचार्य प्रवर श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज ने अनवरत तथा अथक परिश्रम करके जैनागम भंडार को खोलने वास्ते एक अनुपमेय कुंजी तैयार की, ताकि उसके द्वारा भंडार खोलकर जैनागम का बोध प्राप्त कर सकें। वह कुंजी एक महान शब्दकोष के रूप में तैयार की, किन्तु उसका नाम रखते वक्त भी विचार किया गया कि क्या नाम रखा जावे, अतः वही 'अकार' की महत्ता को ध्यान में रखते हुये उक्त महान कोष का नाम "अभिधान राजेन्द्र कोष" रखा गया। यह ग्रन्थ जैनागम के ज्ञान के लिये परम सहायक है। देश-विदेश सर्वत्र इसकी प्रंशसा की गई, और यही अमर कृति उन महान सन्त की पावन स्मृति है। इस अमर कीर्ति से उनका यश सौरभ दिग्दिगन्त में व्याप्त है, ऐसे महापुरुष के प्रति मेरी भी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित है। □

मनुष्य मानवता रख कर ही मनुष्य है। मानवता में सभी धर्म, सिद्धान्त, सुविचार, कर्त्तव्य, सुकार्य आ जाते हैं।

--राजेन्द्र सूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org